बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१ विकल विश्व

२ आकुल अंतर

३ एकांत संगीत

४ निशा निमंत्रण

५ मधुकलश

६ मधुबाला

७ मधुशाला

८ खैयाम की मधुशाला

९ प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग

१० प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए।

सतरंगिनी

बच्चन

ग्रंथ-संख्या—१०९

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भंडार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

पहला संस्करण—अप्रैल, १९४५

मूल्य २॥)

मुद्रक—

महादेव एन० जोशी

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

से प्रकाश की ओर हुई है और सतरंगिनी की कविताएँ क्रमशः उन श्रेणियों को प्रदर्शित करती हैं जिनमें होकर यह लक्ष्य प्राप्त किया गया है।

इनका विश्लेषण करें तो यह कह सकते हैं कि प्रथम भाग वातावरण उपस्थित करता है; दूसरे भाग में गिरे हुए मन का उद्‌बोधन किया गया है, उसे उठाया गया है; तीसरे भाग में जागरण की चेतनता है, चौथे भाग में जीवन का सचेष्ट आमंत्रण है, पाँचवें भाग में उसका आकर्षण संपूर्ण हो गया है, छठे भाग में कवि ने मानो पीठ फेर कर एक क्षिप्र सिंहावलोकन किया है, और अंतिम भाग में उसने जैसे अपने अनुभवसिद्ध निष्कर्षों को रख दिया है।

बच्चन जिन सिद्धांतों पर पहुँचे हैं, संभव है उनमें कुछ नवीनता न प्रतीत हो। उन्होंने जीवन की मान्यताओं को सहज में ही कभी स्वीकार नहीं किया है। उनका यह परिणाम भी स्वानुभव का मूल्य चुका कर संचित किया गया है। कला की दृष्टि से इन परिणामों की महत्ता अपने आप में न होकर उस मानस-मंथन में है जिसके पश्चात इन्हें प्राप्त किया गया है। और यदि आप बच्चन की रचनाओं को पढ़ चुके हैं तो आप इस मानस-मंथन से अपरिचित नहीं हैं।

यों तो सतरंगिनी अपने आप में एक संपूर्ण रचना है और काव्य-प्रेमियों के लिए इसका अलग रस होगा, परंतु सतरंगिनी

सूची

शीर्षक पृष्ठ

शीर्षक पृष्ठ

सतरंगिनी

प्रवेश गीत

इंद्रधनुष की छाया में

इंद्रधनुष की छाया में

(१)

मैंने देखी दुनिया मिलकर
उसकी छवि की झाँकी,
मैंने देखी दुनिया मिलकर
किरणों किरणों की झाँकी,
मैंने देखी दुनिया मिलकर
अँखियाँ [illegible] हुईं,

तूने देखी दुनिया जिसपर
फैल गई रजनी काली;
किंतु कभी क्या तूने देखा
जगती का सस्मित आनन
इंद्रधनुष की छाया में ?

(२)

अलस नयन से तूने देखा
उठ ऊषा का अँगड़ाना,
सजग नयन से तूने देखा
रवि का रथ चढ़कर आना,
धीमी संध्या की गति देखी
तूने शंकित नयनों से,
भीत नयन से तूने देखा
रजनी का ताना - बाना;
किंतु कभी क्या तूने देखा
जगती को विस्मित लोचन
इंद्रधनुष की छाया में ?

प्राण पपीहे का पागल स्वर
चीर चला पत्थर - पानी;
एक विहंगम भरे हृदय से
करता बैठा स्वर साधन
इंद्रधनुष की छाया में।

(५)

मेरे जीवन के प्रभात की
स्वाभाविक स्वर्गिक बोली,
डूब गई उस रव में जिसमें
गाती चिड़ियों की टोली,
दिन को तूती बोली पर
नक्कारों की हुंकारों में,
सूनी और अँधेरी रातों
में डर - डर जिह्वा डोली;
ध्वनित हृदय के नभ से होगा
फूटा जो मेरा गायन
इंद्रधनुष की छाया में!

सतरंगिनी

पहला खंड

सतरंगिनी

(१)

सतरंगिनी, सतरंगिनी!

काले घनों के बीच में,
काले क्षणों के बीच में
उठती गगन में, लो, सजी
यह रंग-बिरंग विहंगिनी!
सतरंगिनी, सतरंगिनी!

(२)

जग में बता वह कौन है,
कहता कि जो तू मौन है,
देखी नहीं मैंने कभी
तुमसे बड़ी मधु भाषिणी!
सतरंगिनी, सतरंगिनी!

(३)

जैसा मनोहर वेश है
वैसा मधुर संदेश है,
दीपित दिशाएँ कर रहीं
तेरी हँसी मृदु हासिनी!
सतरंगिनी, सतरंगिनी!

(४)

भू के हृदय की हलचली,
नभ के हृदय की खलबली
ले सत रागों में चली
यह सप्त रंग तरंगिनी!
सतरंगिनी, सतरंगिनी!

वर्षा समीर

(१)

बरसात की आती हवा

वर्षा-धुले आकाश से,
या चंद्रमा के पास से,
या बादलों की साँस से;
मधुसिक्त, मदमाती हवा,
बरसात की आती हवा।

(२)

यह खेलती है डाल से,
ऊँचे शिखर के भाल से,
आकाश में, पाताल से,
झकझोर - लहराती हवा;
बरसात की आती हवा।

(३)

यह खेलती सर - वारि से,
नद निर्झरों की धार से,
इस पार से, उस पार से,
झुक-झूम बल खाती हवा;
बरसात की आती हवा।

(४)

यह खेलती तरुजाल से,
यह खेलती हर डाल से,
दोनों नयन के जाल से,
अठखेल - इठलाती हवा;
बरसात की आती हवा।

कोयल

(१)

कौन तपस्या करके, कोकिल,
इतना सुमधुर सुर पाया?
कौन तपस्या करके, कोकिल,
काली कर डाली काया?

(२)

वह सुर, जिसको सुनकर सोया
युग का मलयानिल जागा,
जिसको सुन मधुवन पर छाया
युग-युग का आलस भागा।

कोयल

(१)

कौन तपस्या करके, कोकिल,
इतना सुमधुर सुर पाया?
कौन तपस्या करके, कोकिल,
काली कर डाली काया?

(२)

वह सुर, जिसको सुनकर सोया
युग का मलयानिल जागा,
जिसको सुन मधुवन पर छाया
युग-युग का आलस भागा।

(३)

जिसको सुन तरु - कंकालों पर
सहसा दौड़ी हरियाली,
सजी नवल कोमल किसलय से
मधुबन की डाली - डाली।

(४)

बहुरंगी सुमनों से लदकर
लगीं झूमने शाखाएँ,
जिन्हें देखकर नंदन वन की
नव - मालाएँ शरमाएँ।

(५)

बैठो उन डालों के ऊपर
[illegible] गानेवाली,
बैठो उन सुमनों के ऊपर
मधुप [illegible] मतवाली।

(६)

फैली थी जिस जगह उदासी
महामरण की छाया-सी,
वहाँ अमरता खेल रही है
बन सुखमामय सुखरासी।

(७)

जब-जब तू कूका करती है
प्रश्न उठा करता मन में,
इतना प्राणप्रद स्वर पाया
कैसे तूने जीवन में?

(८)

कौन तपस्या करके, कोकिल,
इतना सुमधुर सुर पाया?
कौन तपस्या करके, कोकिल,
काली कर डाली काया?

(१२)

मंद - चरण भी यदि मलयानिल
मधुवन में आ जाता था,
पत्ता - पत्ता इस तरुवर का
हिल - हिल सौ बल खाता था।

(१३)

डाल मात्र बच खड़ा हुआ है
जड़वत भयप्रद कंकाली,
छोड़ चुका इसके जीवन की
सारी आशा वन - माली।

(१४)

पूछा होगा राजा से, 'क्या
यह न हरा होगा फिर से?
'हरे नहीं होते तरु सूखे,
नियम प्रकृति का युग चिर से।'

(१२)

मंद - चरण भी यदि मलयानिल
मधुवन में आ जाता था,
पत्ता - पत्ता इस तरुवर का
हिल - हिल सौ बल खाता था ।

(१३)

डाल मात्र बच खड़ा हुआ है
जड़वत भयप्रद कंकाली,
छोड़ चुका इसके जीवन की
सारी आशा वन - माली ।

(१४)

पूछा होगा राजा से, 'क्या
यह न हरा होगा फिर से ?
'हरे नहीं होते तरु सूखे,
नियम प्रकृति का युग चिर से ।'

(१८)

तप करना होगा जिससे हो
सूखे तरु में हरियाली,
तप करना होगा जिससे हो
ज़िंदा फिर मुर्दा डाली।

(१६)

तप करना होगा जिससे हों
कुसुमित द्रुम की शाखाएँ,
तप करना होगा जिससे फिर
मौन विहंगम दल गाए।

(२०)

ध्रुव निश्चय ने तोड़े होंगे
ममता माया के बंधन,
राह किसी वन की ली होगी
छोड़ सभी पुरजन - परिजन।

(१८)

तप करना होगा जिससे हो
सूखे तरु में हरियाली,
तप करना होगा जिससे हो
ज़िंदा फिर मुर्दा डाली।

(१९)

तप करना होगा जिससे हों
कुसुमित द्रुम की शाखाएँ,
तप करना होगा जिससे फिर
मौन विहंगम दल गाए।

(२०)

ध्रुव निश्चय ने तोड़े होंगे
ममता माया के बंधन,
राह किसी वन की ली होगी
छोड़ सभी पुरजन - परिजन।

(२१)

घोर तपस्या करके तूने
क्षीण किया होगा तन को,
कठिन तपश्चर्या में तूने
लीन किया होगा मन को।

(२२)

लिए प्रलोभन भाँति भाँति के
कामदेव आया होगा,
किंतु देखकर अविचल तुझको
बेहद शरमाया होगा!

(२३)

अग्नि परीक्षा में विजयी हो
और हुई होगी पावन,
तेरे तप के तेजोबल से
डोला होगा इंद्रासन।

(२४)

उतरा होगा इंद्र धरा पर
लेकर देवों की टोली,
खोली होगी तेरे आगे
बहु वरदानों की झोली ।

(२५)

जगती का सारा धन - वैभव
कह दे बस तेरा होगा,
तेरे तप के आगे जग क्या,
स्वर्ग सदा चेरा होगा ।

(२६)

राज्य अखंड धरा का चाहे
तो ले तू उसकी मलका,
ले चाहे सुरपति का नंदन
चाहे धनपति की अलका ।

(२७)

कीर्ति अगर चाहे तो दश दिशि
तेरे यश का गान करें,
तेरे गुण के गीत सुनाते
तारक अंबर में विचरें।

(२८)

जन्म - जन्म में पूरी होंगी
तेरी इच्छाएँ सारी,
बनी हुई तू इसी जन्म में
महा मुक्ति की अधिकारी।

(२९)

बिना किसी संकोच बतादे
जो कुछ तुझको लेना है,
बिना विचारे स्वर्गाधिप को
एवमस्तु कह देना है।

(४२)

कौन तपस्या करके कोकिल,
इतना सुमधुर सुर पाया ?
कौन तपस्या करके कोकिल,
काली कर डाली काया ?

पपीहा

(१)

कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

युग - कल्प हैं सुनते रहे
युग - कल्प सुनते जायँगे,
प्यासे पपीहे के वचन
लेकिन कहाँ रुक पायँगे,
सुनती रहेगी सरज़मीं,
सुनता रहेगा आसमाँ;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

(६)

धड़कन गगन की-सी बनी
उठती जहाँ यह रात में,
मेरा हृदय कुछ ढूँढने
लगता इसी के साथ में,

यह सिद्ध करता है कि मैं
जीवित अभी, मुर्दा नहीं,

है शेष आकर्षण अभी
मेरे लिए अज्ञात में;
थमता न मैं उस ठौर भी

यह गूँजकर मिटती जहाँ !
कहता पपीहा, 'पी कहाँ !'

जुगनू

(१)

अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है!

उठी ऐसी घटा नभ में
छिपे सब चाँद औ' तारे,
उठा तूफ़ान वह नभ में
गए बुझ दीप भी सारे,

मगर इस रात में भी लौ
लगाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

(२)

गगन में गर्व से उठ-उठ
गगन में गर्व से घिर-घिर,
गरज कहती घटाएँ हैं
नहीं होगा उजाला फिर,

मगर चिर ज्योति में निष्ठा
जमाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

(३)

तिमिर के राज का ऐसा
कठिन आतंक छाया है,
उठा जो शीश सकते थे
उन्होंने सिर झुकाया है,

मगर विद्रोह की ज्वाला
जगाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

(४)

प्रलय का सब समाँ बाँधे
प्रलय की रात है छाई,

विनाशक शक्तियां की इस
तिमिर के बीच बन आई,

मगर निर्माण में आशा
दृढ़ाए कौन बैठा है!
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है!

(५)

प्रभंजन, मेघ, दामिनि ने
न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा,
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोड़ा,

मगर विश्वास को अपने
बचाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है!

(६)

प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई,
मगर पड़ प्रेम बंधन में
समझ किसने नहीं खोई,

किसी के पंथ में पलकें
बिछाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है!

नागिन

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(१)

तू प्रलय काल के मेघों का
कज्जल-सा कालापन लेकर,
तू नवल सृष्टि की ऊषा की
नव द्युति अपने अंगों में भर,

बड़वाग्नि-विलोड़ित अंबुधि की
उत्तुंग तरंगों से गति ले,

रथ युत रवि-शशि को बंदी कर
दृग-कोयों का रच बंदीघर,

कौंधती तड़ित को जिह्वा-सी
विष-मधुमय दाँतों में दाबे,
तू प्रकट हुई सहसा कैसे
मेरी जगती में, जीवन में!

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(२)

तू मनोमोहिनी रंभा-सी,
तू रूपवती रति रानी-सी,
तू मोहमयी उर्वशी सदृश,
तू मानमयी इंद्राणी-सी,

तू दयामयी जगदंबा-सी,
तू मृत्यु सदृश कटु, क्रूर, निठुर,

तू लयंकरी कालिका सदृश
तू भयंकरी रुद्राणी - सी,

तू प्रीति, भीति, आसक्ति, घृणा
की एक विषम संज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई
मेरे आगे क्षण-प्रतिक्षण में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आंगन में!

(२)

प्रलयंकर शंकर के सिर पर
जो धूलि-धूसरित जटाजूट,
उसमें कल्पों से सोई थी
पी कालकूट का एक घूँट,

सहसा समाधि कर भंग शंभु
जब तांडव में तल्लीन हुए,

निद्रालसमय, तंद्रानिमग्न
तू धूमकेतु-सी पड़ी छूट,

अब घूम जलस्थल-अंबर में,
अब घूम लोक-लोकांतर में
तू किसको खोजा करती है,
तू है किसके अन्वेषण में!

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(४)

तू नागयोनि नागिनी नहीं
तू विश्व विमोहक वह माया,
जिसकी इंगित पर युग-युग से
यह निखिल विश्व नचता आया,

अपने तप के तेजोबल से
दे तुझको व्याली की काया,

धूर्जटि ने अपने जटिल जूट-
व्यूहों में तुझको भरमाया,

पर मदनकदन कर महायतन
भी तुझे न सब दिन बाँध सके,
तू फिर स्वतंत्र बन फिरती है
सबके लोचन में, तन-मन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(५)

तू फिरती चंचल फिरकी-सी
अपने फन में फुफकार लिए,
दिग्गज भी जिससे काँप उठें
ऐसी भीषण हुंकार लिए,

पर पल में तेरा स्वर बदला,
पल में तेरी मुद्रा बदली,

तेरा रूठा है कौन कि तू
अधरों पर मृदु मनुहार लिए,

अभिनंदन करती है उसका,
अभिवादन करती है उसका,
लगती है कुछ भी देर नहीं
तेरे मन के परिवर्तन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(१२)

सहसा यह तेरी भृकुटि झुकी,
नभ से करुणा की वृष्टि हुई,
मृत मूर्च्छित पृथ्वी के ऊपर
फिर से जीवन की सृष्टि हुई,

सहसा यह तेरी भृकुटि तनी,
नभ से अंगारे बरस पड़े,

जग के आँगन में लपट उठी,
स्वप्नों की दुनिया नष्ट हुई,

स्वेच्छाचारिणि, है निष्कारण
सब तेरे मन का क्रोध, कृपा,
जग मिटता-बनता रहता है
तेरे भ्रू के संचालन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

(१३)

अपने प्रतिकूल गुणों की सब
माया तू संग दिखाती है,
भ्रम, भय, संशय, संदेहों से
काया विजड़ित हो जाती है,

फिर एक लहर-सी आती है,
फिर होश अचानक होता है,

विश्वासमयी आशा, निष्ठा,
श्रद्धा पलकों पर छाती है,

तू मार अमृत से सकती है
अमरत्व गरल से दे सकती,
मेरी मति सब सुध-बुध भूली
तेरे छलनामय लक्षण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(१४)

विपरीत क्रियाएँ मेरी भी
अब होती हैं तेरे आगे,
पग तेरे पास चले आए
जब वे तेरे भय से भागे,

मायाविनि, क्या कर देती है
सीधा उलटा हो जाता है,

जब मुक्ति चाहता था अपनी
तुझसे मैंने बंधन माँगे,

अब शांति दुसह-सी लगती है,
अब मन अशांति में रमता है,
अब जलन सुहाती है उर को,
अब सुख मिलता उत्पीड़न में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(१५)

तूने आँखों में आँख डाल
है बाँध लिया मेरे मन को,
मैं तुझे कीलने चला मगर
कीला तूने मेरे तन को,

तेरी परछाईं-सा वन में
तेरे सँग हिलता-डुलता हूँ,

मैं नहीं समझता अलग-अलग
अब तेरे-अपने जीवन को,

मैं तन-मन का दुर्बल प्राणी
ज्ञानी, ध्यानी भी बड़े-बड़े
हो दास चुके तेरे, मुझको
क्या लज्जा आत्म समर्पण में

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(१६)

तुझपर न सका चल कोई भी
मेरा प्रयोग मारण-मोहन,
तेरा न फिरा मन और कहीं
फेंका भी मैंने उच्चाटन,

सब मंत्र, तंत्र, अभिचारों पर
तू हुई विजयिनी निष्प्रयत्न,

उलटा तेरे वश में आया
मेरा परिचालित वशीकरण;

कर यत्न थका, तू सध न सकी
मेरे गीतों से, गायन से,
कर यत्न थका, तू बँध न सकी
मेरे छंदों के बंधन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

(१७)

सब साम - दाम औ' दंड-भेद
तेरे आगे बेकार हुआ,
जप, तप, व्रत, संयम, साधन का
असफल सारा व्यापार हुआ,

तू दूर न मुझसे भाग सकी,
मैं दूर न तुझसे भाग सका,

अनिवारिणि, करने को अंतिम
निश्चय ले मैं तैयार हुआ—

अब शांति, अशांति, मरण, जीवन
या इनसे भी कुछ भिन्न अगर,
सब तेरे विषमय चुंबन में,
सब तेरे मधुमय दंशन में!

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!
नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे प्राणों के प्रांगण में!'

मयूरी

(१)

मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !

गगन में सावन घन छाए,
न क्यों सुधि साजन की आए;
मयूरी, आँगन-आँगन नाच !
मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !

(२)

धरणि पर छाई हरियाली,
सजी कलि-कुसुमों से डाली;
मयूरी, मधुवन, मधुवन नाच !
मयूरी,
नाच, मगन - मन नाच !

(३)

समीरण सौरभ सरसाता,
घुमड़ घन मधुकण बरसाता;
मयूरी, नाच मदिर मन नाच !
मयूरी,
नाच, मगन-मन नाच !

(४)

निछावर इंद्रधनुष तुझपर
निछावर, प्रकृति, पुरुष तुझपर,
मयूरी, उन्मन-उन्मन नाच !
मयूरी, छूम-छनाछन नाच !
मयूरी, नाच मगन-मन नाच !

सतरंगिनी

दूसरा खंड

१—अभावों की रागिनी

२—अँधेरे का दीपक

३—यात्रा और यात्री

४—पथ की पहचान

५—नंदन और बगिया

६—जो बीत गई

७—कामना

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(२)

चीर किसके कंठ को यह
उठ रही आवाज़ ऊपर,
दर न दीवारें जिसे हैं
रोक सकतीं, छत न छप्पर,

जो विलमती है नहीं नभ-
चुंबिनी अट्टालिका में,

हैं लुभा सकते न जिसको
व्योम के गुंबद मनोहर,

जो अटकती है नहीं
आकाश - भेदी धरहरों में,
लौट बस जिसकी प्रतिध्वनि
तारकों से आ रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(३)

बोल ऐ आवाज़ तू किस
ओर जाना चाहती है,
दर्द तू अपना बता
किसको जताना चाहती है,

कौन तेरा खो गया है
इस अँधेरी यामिनी में,

तू जिसे फिर से निकट
अपने बुलाना चाहती है,

खोजती फिरती किसे तू
इस तरह पागल, विकल हो,
चाह किसकी है तुझे जो
इस तरह तड़पा रही है;

कौन गाता है कि कोई
पीर जागी जा रही है।

(४)

बोल क्या तू थक गई है
विश्व को विनती सुनाते,
बोल क्या तू थक गई है
विश्व से आशा लगाते,

क्या सही अपनी उपेक्षा
अब नहीं जाती जगत से,

बोल क्या ऊबी परीक्षा
धैर्य की अपनी कराते,

जो कि खो विश्वास पूरा
विश्व की संवेदना में,
स्वर्ग की अपनी व्यथाएँ
आज तू बतला रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(५)

अनसुनी आवाज़ जो
संसार में होती रही है,
स्वर्ग में भी साख अपना
वह सदा खोती रही है,

स्वर्ग तो कुछ भी नहीं है
छोड़कर छाया जगत की,

स्वर्ग सपने देखती दुनिया
सदा सोती रही है,

पर किसी असहाय मन के
बीच बाकी एक आशा
एक बाकी आदर्श का
गीत गाती जा रही है;

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।

(६)

पर अभावों की अरी ओ
रागिनी, तू कब अकेली,
तान मेरे भी हृदय की
ले बनी तेरी सहेली,

हो रहे होंगे ध्वनित
कितने हृदय यों साथ तेरे,

तू बुझाती, बूझती जाती
युगों से यह पहेली—

"एक ऐसा गीत गाया
जो सदा जाता अकेले,
एक ऐसा गीत जिसको
सृष्टि सारी गा रही है;"

अभावों की रागिनी

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी जा रही है।
कौन गाता है कि आई
नींद भागी जा रही है।

अँधेरे का दीपक

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(१)

कल्पना के हाथ से कम-
नीय जो मंदिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमें
वितानों को तना था,
स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से सँवारा,
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों
से, रसों से जो सना था,
ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की
कुटिया बनाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है!

(२)

बादलों के अश्रु से धोया
गया नभ - नील नीलम
का बनाया था गया मधु-
पात्र मनमोहक, मनोरम,

प्रथम ऊषा की किरण की
लालिमा - सी लाल मदिरा

थी उसी में चमचमाती
नव घनों में चंचला सम,

वह अगर टूटा मिलाकर
हाथ की दोनों हथेली,
एक निर्मल स्रोत से
तृष्णा बुझाना कब मना है?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है?

(३)

क्या घड़ी थी एक भी
चिंता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया
भी पलक पर थी न छाई,

आँख से मस्ती झपकती,
बात से मस्ती टपकती,

थी हँसी ऐसी जिसे सुन
बादलों ने शर्म खाई,

वह गई तो ले गई
उल्लास के आधार माना,
पर अथिरता पर समय की
मुसकराना कब मना है?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(४)

हाय वे उन्माद के झोंके
कि जिनमें राग जागा,
वैभवों से फेर आँखें
गान का वरदान माँगा,

एक अंतर से ध्वनित हों
दूसरे में जो निरंतर,

भर दिया अंबर-अवनि को
मत्तता के गीत गा-गा,

अंत उनका हो गया तो
मन बहलने के लिए ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई
गुनगुनाना कब मना है !

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

(५)

हाय वे साथी कि चुंबक-
लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के
बीच ही गोया समाए,

दिन कटे ऐसे कि कोई
तार वीणा के मिलाकर

एक मीठा और प्यारा
ज़िंदगी का गीत गाए,

वे गए तो सोचकर यह
लौटनेवाले नहीं वे,
खोज मन का मीत कोई
लौ लगाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीया जलाना कब मना है ?

(६)

क्या हवाएँ थीं की उजड़ा
प्यार का वह आशियाना,
कुछ न आया काम तेरा
शोर करना, गुल मचाना,

नाश की उन शक्तियों के
साथ चलता ज़ोर किसका,

किंतु ऐ निर्माण के
प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,

जो बसे हैं वे उजड़ते
हैं प्रकृति के जड़ नियम से,
पर किसी उजड़े हुए को
फिर बसाना कब मना है !

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?
घन तिमिर को मृदु किरण से
गुदगुदाना कब मना है ?

यात्रा और यात्री

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !

(१)

चल रहा है तारकों का
दल गगन में गीत गाता,
चल रहा आकाश भी है
शून्य में भ्रमता भ्रमाता,

पाँव के नीचे पड़ी
अचला नहीं यह चंचला है,

एक कण भी, एक क्षण भी
एक थल पर टिक न पाता,

शक्तियाँ गति की तुझे
सब ओर से घेरे हुए हैं;
स्थान से अपने तुझे
टलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !

(२)

थे जहाँ पर गर्त पैरों
को जमाना ही पड़ा था,
पत्थरों से पाँव के
छाले छिलाना ही पड़ा था,

घास मखमल-सी जहाँ थी
मन गया था लोट सहसा,

थी घनी छाया जहाँ पर
तन जुड़ाना ही पड़ा था,

पग परीक्षा, पग प्रलोभन
ज़ोर - कमज़ोरी भरा तू,
इस तरफ़ डटना उधर
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर;

सांस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर!

(२)

शूल कुछ ऐसे, पगों में
चेतना की स्फूर्ति भरते,
तेज़ चलने को विवश
करते हमेशा जबकि गड़ते,

शुक्रिया उनका कि वे
पथ को रहे प्रेरक बनाए,

किंतु कुछ ऐसे कि रुकने
के लिए मजबूर करते,

और जो उत्साह का
देते कलेजा चीर ऐसे,
कंटकों का दल तुझे
दलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर;

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !

(४)

सूर्य ने हँसना भुलाया,
चंद्रमा ने मुसकराना,
और भूली यामिनी भी
तारिकाओं को जगाना,

एक झोंके ने बुझाया
हाथ का भी दीप लेकिन

मत बना इसको पथिक तू
बैठ जाने का बहाना,

एक कोने में हृदय के
आग तेरे जग रही है,
देखने को मग तुझे
जलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर;

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !

(५)

यह कठिन पथ और कब
उसकी मुसीबत भूलती है,
साँस उसकी याद करके
भी अभी तक फूलती है,

यह मनुज की वीरता है
या कि उसकी बेहयाई,

साथ ही आशा सुखों का
स्वप्न लेकर झूलती है,

सत्य सुधियाँ, झूठ शायद
स्वप्न, पर चलना अगर है,
झूठ से सच को तुझे
छलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर,

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !
सार्थक निज नाम को
करना पड़ेगा ही मुसाफ़िर !

पथ की पहचान

पूर्व चलने के बटोही
बाट की पहचान करले।

(१)

पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों की ज़बानी,

अनगिनत राही गए इस
राह से, उनका पता क्या,

पर गए कुछ लोग इसपर
छोड़ पैरों की निशानी,

यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ पंथी
पंथ का अनुमान करले;

पूर्व चलने के बटोही
बाट की पहचान करले।

(२)

यह बुरा है या कि अच्छा,
व्यर्थ दिन इसपर बिताना,
जब असंभव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना,

तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सरल इससे बनेगी,

सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,

हर सफल पंथी यही
विश्वास ले इसपर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान करले।

पूर्व चलने के बटोही
बाट की पहचान करले।

(३)

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग, वन सुंदर मिलेंगे,

किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी, यह भी अनिश्चित,

है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,

कौन सहसा छूट जाएँगे
मिलेंगे कौन सहसा;
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन करले;

पूर्व चलने के बटोही
बाट की पहचान करले।

(५)

कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,

और तू कर यत्न भी तो
मिल नहीं सकती सफलता,

ये उदय होते लिए कुछ
ध्येय नयनों के निलय में,

किंतु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो,
सत्य का भी ज्ञान करले;

पूर्व चलने के बटोही
बाट की पहचान कर ले।

(५)

स्वप्न आता स्वर्ग का दृग-
कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को
ललकती उन्मुक्त छाती,

रास्ते का एक काँटा
पाँव का दिल चीर देता,

रक्त की दो बूँद गिरतीं
एक दुनिया डूब जाती,

'आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों'
कंटकों की इस अनोखी
सीख का सम्मान कर ले।

पूर्व चलने के बटोही
बाट की पहचान करले।
बाट के अनुकूल सारे
साज-साधन से सँवर ले।

नंदन और बगिया

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

(१)

कहाँ गया वह मधुवन जिसकी
आभा-शोभा नित्य नई थी,
जिसके आँगन में वासंती
आकर जाना भूल गई थी,

जिसमें खिलती थीं इच्छा की
कलियाँ, अभिलाषा फलती थी,

साँसों में भरती मादकता
वायु जहाँ की मोदमयी थी,

वह सूखा तो आँसू से क्या
हृदय रक्त से हरा न होगा,
सूख-सूख फिर-फिर लहराता
वसुधा का ही अंचल धानी।

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी ।

(२)

दिग्दिगंत में गुंजित होने-
वाला स्वर पड़ मंद गया क्यों,
जुड़ा हुआ शब्दों - भावों से
खंड - खंड हो छंद गया क्यों,

गाती थीं नंदन की परियाँ,
राग मिला तू भी गाता था,

बंद हुए यदि उनके गायन
गाना तेरा बंद हुआ क्यों,

प्रेरित होनेवाले मन की
प्रेरक शक्ति अकेली कब थी,
मूक पड़े गंधर्वों के सुर
कूक रही कोयल मस्तानी;

सोच न कर सूखे नंदन का,
देता जा बगिया में पानी।

(३)

उस मधुवन का स्वप्न भला क्या
जहाँ नहीं पतझड़ आता है,
जहाँ सुमन अपने जीवन पर
आकर नहीं बिखर पाता है,

जहाँ ढुलकते नहीं कली की
आँखों से मोती के आँसू,

जहाँ नहीं कोकिल का व्याकुल
क्रंदन गायन बन जाता है,

मर्त्य अमर्त्यों के सपने से
धोखा देता है अपने को,
अमरों के अमरण जीवन से
मादक मेरी क्षणिक जवानी;

जो बीत गई

(१)

जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में एक सितारा था,
माना वह बेहद प्यारा था,

वह डूब गया तो डूब गया;
अंबर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गए फिर कहाँ मिले;
पर बोलो टूटे तारों पर

कब अंबर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(२)

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,

जो बीत गई

वह सूख गया तो सूख गया;
मधुवन की छाती को देखो,

सूखीं कितनी इसकी कलियाँ,
मुर्झाईं कितनी वल्लरियाँ,
जो मुर्झाईं फिर कहाँ खिलीं;
पर बोलो सूखे फूलों पर

कब मधुवन शोर मचाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

(३)

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन - मन दे डाला था,

वह टूट गया तो टूट गया;
मदिरालय का आँगन देखो,

कितने प्याले हिल जाते हैं,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं,

जो गिरते हैं कब उठते हैं;
पर बोलो टूटे प्यालों पर

कब मदिरालय पछताता है!
जो बीत गई सो बात गई!

(४)

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन लेकर आए हैं,
प्याले टूटा ही करते हैं,

फिर भी मदिरालय के अंदर
मधु के घट हैं, मधुप्याले हैं,

जो मादकता के मारे हैं
वह मधु लूटा ही करते हैं;

वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर,

जो बीत गई

जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है!
जो बीत गई सो बात गई!
जो बीत गई, सो बीत गई!

कामना

(१)

संक्रामक शिशिर समीरण छू
जब मधुवन पीला पड़ जाता,
जब कुसुम-कुसुम, जब कली-कली
गिर जाती, पत्ता झड़ जाता,

तब पतझड़ का उजड़ा आँगन
करुणा ममतामय स्वर वाली
जो कोकिल मुखरित रखती है
तेरे मन को भी बहलाए!

(२)

जब ताप भरा, जब दाप भरा
दुख-दीर्घ दिवस ढल चुकता है,
जब अंग-अंग, जब रोम-रोम
वसुधातल का जल चुकता है,

तब शीतल, कोमल स्नेह भरी
जो शशि किरणें चुपके-चुपके

पृथ्वी की छाती सहलाती,
तेरे छाले भी सहलाएँ !

(३)

जब प्यास-प्यास कर धरती का
पौधा - पौधा मुर्झाता है,
जब बूँद-बूँद को तरस-तरस
तिनका-तिनका मर जाता है,

तब नव जलधर की जो बूँदें
बरसातीं भू पर हरियाली,
तेरे मानस के अंदर भी
आशा के अंकुर उगलाएँ !

(४)

प्रलयांधकार से घिर-घिरकर
युग-युग निश्चल सोने पर भी,
युग - युग चेतनता के सारे
लक्षण-लक्षण खोने पर भी

जो सहसा पड़ती जाग राग,
रस, रंगों की प्रतिमा बनकर,
वह तुझे मृत्यु की गोदी में
जीवन के सपने दिखलाए !

सतरंगिनी

तीसरा खंड

प्रतिकूल

(१)

बहती है वासंती बयार,
पर एक पेड़ शाखावशेष
कर सांध्य गगन को पृष्ठभूमि
है खड़ा हुआ अविचल, उदास,
कोकिल के स्वर से उदासीन;

है सोच रहा मन में मानो
उन मरकत पत्रों की बातें,
जो झुन-झुन मरमर ध्वनि करते
उसकी डाली-डाली झूले,
उन कलियों की, उन कुसुमों की,
जो उसकी गोदी में फूले,
जो पड़ पीले, सूखे ढीले
गिर गए, कहीं ऐसे फिर न उठे !

अब उसे विदित, हो परिस्फुटित
शाख-शाख अंकुर में मुकुल-मुकुल !

(२)

पड़ती है पावस की फुहार,

पर वसुंधरा का एक भाग
है लुटा हुआ जिसका सुहाग,
खल्वाटों - सा जिसका ललाट,
है पड़ा चटानों-सा अचेत;

है सोच रहा मन में मानो
उन कोमल-कोमल हरे-हरे
लघु-लघु तृण - पौधों की बातें,
जिनकी मखमल-सी शैया पर
मलयानिल करवट लेता था,
आशीष - दुआएँ देता था,
जो ग्रीष्मातप में जल-जलकर
ऐसे सूखे फिर उग न सके!

जब उगे उचित, हो नव मज्जित
हरियाली में मंजुल - मंजुल!

प्रतिकूल

(३)

आती है जीवन की पुकार,

पर मानवता का एक सजग
प्रतिनिधि सुधियों के खँडहर में
है बैठा चिंता में निमग्न
कर अपने दोनों कान बंद;

है सोच रहा मन में मानो
उन मादक स्वप्नों की बातें,
जिनमें इच्छाएँ मूर्तिमान
हो सहसा अंतर्धान हुईं,
उन मधुर मुहूर्तों की बातें,
जो मन मंदिर में विहँस-खेल
औ' पल भर चहल-पहल करके
हो लुप्त गईं औ' फिर न मिलीं!

अब उसे उचित, हो प्रतिध्वनित
उसके प्रति स्वर पर पुलकाकुल!

संमानित

(१)

पथ में भरी गई कठिनाई,
मंज़िल तेरे पास न आई,

(नहीं शत्रुता थी यह तुझसे)

क्योंकि चला था तू लेकरके
कभी नहीं रुकने की आन।

(२)

रवि ने तुझको पथ न दिखाया,
झंझा ने कर-दीप बुझाया,

(नहीं उपेक्षा थी यह तेरी)

क्योंकि लगन में एक तुझे था
अपनी ज्वाला का अभिमान!

(३)

ऊँचा तूने हाथ उठाया,
लेकिन अपना लक्ष्य न पाया,

(यह तेरा उपहास नहीं था)

क्योंकि तुझे थी केवल अपने
मनुजोचित कद की पहचान!

(४)

अमर वेदनाओं में अंतर
मथा गया तेरा निशि-वासर,

(यह तुझपर अन्याय नहीं था)

क्योंकि नहीं था सबसे बढ़कर
तेरी छाती का संमान!

अजेय

(१)

अजेय तू अभी बना !

न मंज़िलें मिलीं कभी,
न मुश्किलें हिलीं कभी,

मगर क़दम थमे नहीं
क़रार-क़ौल जो ठना।
अजेय तू अभी बना !

(२)

सफल न एक चाह भी,
सुनी न एक आह भी,

मगर नयन भुला सके
कभी न स्वप्न देखना।
अजेय तू अभी बना !

(३)

अतीत याद है तुझे,
कठिन विषाद है तुझे,
मगर भविष्य से रुका
न आँखमुदौल खेलना!
अजेय तू अभी बना!

(४)

सुरा समाप्त हो चुकी,
सुपात्र-माल लो चुकी,
मगर मिटी, हटी, दबी
कभी न प्यास-वासना!
अजेय तू अभी बना!

(५)

पहाड़ टूटकर गिरे,
प्रलय पयोद भी घिरे,
मनुष्य है कि देव है
कि मेरुदंड है तना!
अजेय तू अभी बना!

प्रत्याशा

(१)

किया गया मधुवन को विह्वल,
टूटा तरुओं का दल, प्रतिदल,
फाड़ा गया कुसुम का दामन,
चीरा गया कली का अंचल,
क्योंकि कोकिला की वाणी में
थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा
मृत मधुवन को दे सकती थी
फिर से वह जीवन का दान ।

(२)

मिला सूर्य को देश-निकाला,
हरा गया जग का उजियाला,
बहुरंगी दुनिया के ऊपर
फैला तम का परदा काला;

क्योंकि उषा के नवल हास में
थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा
तिमिरावृत जग पर वह फिर से
ला सकती थी स्वर्ण विहान।

(३)

दुनिया गई जलाई तेरी,
दुनिया गई मिटाई तेरी,
सोने का संसार जहाँ था
वहाँ लगी मिट्टी की ढेरी,

क्योंकि हृदय के अंदर तेरे
थी वह [illegible] कि जिसके द्वारा
महानाश की [illegible] तू
कर [illegible] नव निर्माण!

चेतावनी

मानी, देख न कर नादानी।

मातम का तम छाया, माना,
अंतिम सत्य इसे यदि जाना,
तो तूने जीवन की अब तक
आधी सुनी कहानी।
मानी, देख न कर नादानी।

सुन यदि तूने आशा छोड़ी,
तो अपनी परिभाषा छोड़ी,
तुझे मिली थी यह अमरों की
केवल एक निशानी।
मानी, देख न कर नादानी।

ध्वंसों में यदि सिर न उठाया,
सर्जन का यदि गीत न गाया,
स्वर्ग लोक की आशाओं पर
फिर जाएगा पानी।
मानी, देख न कर नादानी।

निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

(१)

वह उठी आँधी कि नभ में
छा गया सहसा अँधेरा,
धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भाँति घेरा,

रात-सा दिन हो गया फिर
रात आई और काली,

लग रहा था अब न होगा
इस निशा का फिर सवेरा,

रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण,
किंतु प्राची से उषा की
मोहिनी मुसकान फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

(२)

वह चले झोंके कि काँपे
भीम कायावान भूधर,
जड़ समेत उखड़-पुखड़कर
गिर पड़े, टूटे विटप वर,

हाय, तिनकों से विनिर्मित
घोंसलों पर क्या न बीती,

डगमगाए जबकि कंकड़,
ईंट पत्थर के महल - घर;

बोल आशा के विहंगम,
किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

(२)

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों
में उषा है मुसकराती,
घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग पंक्ति गाती;

एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है,

वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती!

नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से
सृष्टि का नव गान फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !
नेह का आधान फिर - फिर,
नेह का आख्यान फिर - फिर !

सतरंगिनी

चौथा खंड

दो नयन

(१)

दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का श्रृंगार देखूँ।

स्वप्न की जलती हुई नगरी
धुआँ जिनमें गई भर,
ज्योति जिनकी जा चुकी है
आँसुओं के साथ झर-झर,

मैं उन्हीं से किस तरह फिर
ज्योति का संसार देखूँ,
दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का श्रृंगार देखूँ।

(२)

देखते युग-युग रहे जो
विश्व का नव रूप अपलक,

जो उपेक्षा, छल,
मग्न था नख से शिखा तक,

मैं उन्हीं से किस तरह फिर
प्यार का संसार देखूँ,
दो नयन जिनसे कि फिर मैं
विश्व का शृंगार देखूँ।

(३)

संकुचित दृग की परिधि थी
बात यह मैं मान लूँगा,
विश्व का इससे जुदा जब
रूप भी मैं जान लूँगा,

दो नयन जिनसे कि मैं
संसार का विस्तार देखूँ;
नयन जिनसे कि फिर मैं
का शृंगार देखूँ।

जादू

(१)

कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में !

जो कुदिन पर थम गया था
चक्र फिरने का, समय का,
अस्त दुर्दिन में हुआ जो
भाग्य के नूतन उदय का,

कौन करता है इशारा
एक आशा की किरण में !
कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

(२)

प्यार के संसार में चिर-
काल निर्वासित रहा जो,

जो अपरिचित सब जगह
अपमान, अवहेला सहा जो,

ले रहा है कौन उसको
आज फिर अपनी शरण में ?
कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

(३)

मैं नहीं ज्योतिर्विदों
सामुद्रिकों के पास जाता,
क्योंकि मेरा कंठ ही
भवितव्यता मेरी बताता;

भर रहा है कौन भूला
राग फिर मेरे वचन में ?
कौन जादू डालता है
आज फिर मेरे नयन में ?

तूफ़ान

(१)

कौन यह तूफ़ान रोके !

हिल उठे जिससे समुंदर,
हिल उठे दिशि और अंबर,

हिल उठे जिससे धरा के
वन सघन कर शब्द हर-हर,
उस बवंडर के झकोरे
किस तरह इंसान रोके !
कौन यह तूफ़ान रोके !

(२)

उठ गया, लो, पाँव मेरा,
छुट गया, लो, ठाँव मेरा,

अलविदा, ऐ साथवालो,
और मेरा पंथ डेरा;
तुम न चाहो, मैं न चाहूँ,

कौन भाग्य-विधान रोके!
कौन यह तूफ़ान रोके!

(३)

आज मेरा दिल बढ़ा है,
आज मेरा दिल चढ़ा है,

हो गया बेकार सारा
जो लिखा है, जो पढ़ा है;
रुक नहीं सकते हृदय के
आज तो अरमान रोके!
कौन यह तूफ़ान रोके!

(४)

आज करते हैं इशारे
उच्चतम नभ के सितारे,
निम्नतम घाटी डराती
आज अपना मुँह पसारे;

तूफ़ान

एक पल नीचे नज़र है,
एक पल ऊपर नज़र है;
कौन मेरे अश्रु थामे,
कौन मेरे गान रोके !
कौन वह तूफ़ान रोके !

मृगतृष्णा

(१)

अँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आई सलोनी।

खोलकर पलकें दृगों में
रूप की मदिरा भरोगी,
पुतलियों में पैठा तैरोगी,
नयन मंथन करोगी,

आज फिर मुझको पड़ेगी
शांत मन की शांति खोनी।
अँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आई सलोनी।

(२)

तुम करोगी आज मेरे
प्राण की पूरी समीक्षा,

मृगतृष्णा

तुम करोगी आज मेरे
धैर्य की पूरी परीक्षा,

आज फिर मुझको पड़ेगी
शक्तियाँ बिखरी सँजोनी।
आँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आई सलोनी।

(२)

जानता मैं हूँ कि मृगभ्रम
तुम, नहीं हो धार जल की,
पर मुझे है लाज रखनी
आज अंतर के अनल की,

चाहिए जिसको सलिल के
नाम पर भी हौंस होनी;
आँखमिचौनी आज फिर तुम
खेलने आई सलोनी।

प्यार और संघर्ष

(१)

प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !
आँखमिचौली खेलती हो खूब खेलो,
खोज लूँगा, तुम कहीं भी आड़ ले लो,
खेल कब होगा खतम, यह तो बताओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

(२)

खेल कल का हो गया संग्राम, देखो,
कुछ नहीं खोया, अगर परिणाम देखो,
जीत जाओगी अगर तुम हार जाओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ !

प्रीति पुर में [illegible]
बंधनों में बाँ[illegible]

यह न मानो, एक मानी को गँवाओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ!

(४)

प्रेरणा पर्याप्त थी मुझको हृदय की,
तुम समझती हो नहीं भाषा प्रणय की,
यह समय का व्यंग था—तुम दूर जाओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ!

(५)

जिस तरह शिशिरांत में कंकाल तरु पर
फैलती पत्रावली सहसा विहँसकर,
शुष्क-जीवन में अगर तुम इस तरह से
आ नहीं सकती सहज ही तो न आओ,
प्यार को संघर्ष मत, सुंदरि, बनाओ!

तुम नहीं हो

(१)

शब्द में ढल भाव मेरे
लेखनी पर जब उतरते,
तब विवश जिसके गले में
गीत बन-बनकर विचरते,

तुम नहीं हो
हाय, कोई सरा है।

(२)

चिर विधुर मेरे हृदय में
जब मिलन-मनुहार उठती,
तब चपल जिसके पगों की
पायलें झनकार उठतीं,

तुम नहीं हो
हाय, कोई दूसरा है।

(३)

तीव्र जीवन की तृषा से
जबकि मेरा कंठ जलता,
तब अकारण ही पुलक मन-
प्राण ही जिसका पिघलता,

तुम नहीं हो
हाय, कोई दूसरा है।

नई झनकार

(१)

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

मौन तम के पार से यह कौन
तेरे पास आया,
मौत में सोए हुए संसार
को किसने जगाया,

कर गया है कौन फिर भिनसार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(२)

रश्मियों में रँग पहन ली आज
किसने लाल सारी,
फूल-कलियों से प्रकृति ने माँग
है किसकी सँवारी,

कर रहा है कौन फिर शृंगार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(३)

लोक के भय ने भले ही रात
का ही भय मिटाया,
किस लगन ने रात-दिन का भेद
ही मन से हटाया,
कौन करता है दिवा-अभिसार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(४)

र जिसे लेने चला था भूल-
कर अस्तित्व अपना,

तू जिसे लेने चला था बेच-
कर अपनत्व अपना,

दे गया है कौन वह उपहार,
वीणा बोलती है;

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(५)

जो करुण विनती, मधुर मनुहार
से न कभी पिघलते,

टूटते कर, फूट जाते शीश
तिल भर भी न हिलते,

खुल कभी जाते स्वयं वे द्वार,
वीणा बोलती है;

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

(६)

भूल तू जा अब पुराना गीत
औ' गाथा पुरानी,
भूल तू जा अब दुखों का राग
दुर्दिन की कहानी,

ले नया जीवन, नई झनकार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है!

सतरंगिनी

पाँचवाँ खंड

मुझे पुकार लो

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

(१)

ज़मीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहान देखकर मुझे
नहीं ज़बान खोलता,
नहीं जगह कहीं जहाँ
न अजनबी गिना गया,

कहाँ-कहाँ न फिर चुका
दिमाग़-दिल टटोलता,
कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार लो,-
दुलार कर सुधार लो!

कौन तुम हो

(१)

ले प्रलय की नींद सोया
जिन दृगों में था अँधेरा,
आज उनमें ज्योति बनकर
ला रही हो तुम सवेरा,

सृष्टि की पहली उषा की
यदि नहीं मुसकान तुम हो,
कौन तुम हो?

(२)

आज परिचय की मधुर
मुसकान दुनिया दे रही है,
आज सौ-सौ बात के
संकेत मुझसे ले रही है,

विश्व से मेरी अकेली
यदि नहीं पहचान तुम हो,
कौन तुम हो?

(३)

हाय किसकी थी कि मिट्टी
में मिला संसार मेरा,
हास किसका है कि फूलों-
सा खिला संसार मेरा,

नाश को देती चुनौती
यदि नहीं निर्माण तुम हो,
कौन तुम हो?

(४)

मैं पुरानी यादगारों
से विदा भी ले न पाया
था कि तुमने ला नए ही
लोक में मुझको बसाया,

जो नहीं उठकर ठहरता
यदि नहीं तूफ़ान तुम हो,
कौन तुम हो?

कौन तुम हो

(५)

तुम किसी बुझती चिता को
जो धुकाती खींच लाती
हो, उसी से ब्याह-मंडप
के तले दीपक जलाती,

मृत्यु पर निरंतर विजय की
यदि नहीं दृढ़ ध्यान तुम हो,
कौन तुम हो?

(६)

यह इशारे हैं कि जिनपर
काल ने भी चाल छोड़ी,
मौत में आया अमर तो
कौन-सी सौगंध तोड़ी,

तुम जिसे कहना असंभव
यदि नहीं आह्वान तुम हो,
कौन तुम हो!

आज तो मैंने हृदय की
भावना साकार पा ली;
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली!

(३)

प्राण-प्राणों से गए मिल
क्या मिले दो कंठ के स्वर,
प्राण-प्राणों में गए घुल
क्या मिले आतुर अधर-कर

दी बना किसने उजाली
आज मेरी रात काली;
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली!

(४)

जल रहा जिस अग्नि में था
एक युग से मैं निरंतर,

वेदना का गीत

दी बुझा तुमने हँसी दो
बूँद आँसू की गिराकर:

एक पल पहले जहाँ थे
ताप के दाहक अँगारे,
तुम वहीं हो उस जगह पर
हीर आशा के सँवारे,

फिर कहीं से है मिला दी
आज होली से दिवाली:
वेदना का गीत गाकर
वेदना तुमने बँटा ली!

सुख की एक साँस पर होता
है अमरत्व निछावर,

तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

(२)

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने!

मन आधी खींच लाई
क्यों तुम्हें यों पास मेरे,
क्यों तुम्हें विचलित उठे कर
अश्रु औ' उच्छ्वास मेरे,

स्नेह के, संवेदना के,
मोह के, ममता, व्यथा के
तन आँसू में निमज्जित
कर लिए क्यों लाल तुमने?

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने!

(२)

खुल गया उन आँसुओं की
धार से दुर्भाग्य मेरा,
इस तरह जैसे कि काले
मेघ से आकाश घेरा

वृष्टि होने से अचानक
खुल गया हो, खिल पड़ा हो
और नव सौभाग्य से
चमका दिया फिर भाल तुमने।

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने!

(३)

विधि-विधानों को किया था
हारकर स्वीकार मैंने,
कर लिया था खूब अपने
आप को तैयार मैंने—

'अब न चाहूँगा कि बदले
फिर कभी यह भाग्य मेरा'
कर्म-गति, मेरी प्रतिज्ञा
दी पलों में टाल तुमने!

टाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने!

(४)

काल था जैसे चलाता
उस तरह से चल रहा था,
अस्थि-दम-आनन्द मेरा
प्राण-तन-मन जल रहा था.

आँसुओं में मुस्कराहट
मुस्कराहट में निरंतर
[illegible] पथ पर कुसुम-पाँति,
मालिका दी डाल तुमने!

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने!

(५)

देखता था काल बस दो
बूँद गिरने का इशारा,
कर दिया अमृत गरल को
और बदला दृश्य सारा,

विष - विदग्ध अधर सुधा में
हो गए सहसा विसुध - बुध,
कौन - सा आसव दिया दृग
कोरकों से ढाल तुमने;

डाल दी मेरे गले में
आँसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने!

जयमाल

(६)

कर रहा था चंद्र शीतल
रश्मियां तुमपर निछावर,
खोज करता था तुम्हारी
मन्द मलयानिल निरंतर.

पाँव धोने को तुम्हारे
था तरसता सिंधु का कर.
क्या समझ कर, किंतु चुन ली
एक पागल ज्वाल तुमने:

डाल दी मेरे गले में
आंसुओं की माल तुमने,
मोतियों की माल तुमने !

लौटा लाओ

(१)

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन की दीवाली,
जब होड़ चली थी लेने को
दिन से मेरी रजनी काली,

जब जगमग-जगमग करता था
मेरी हर आशा का दीपक,

जब घोर कुहू में भी छाई
थी मेरे चेहरे पर लाली;

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन की दीवाली;

मैं तो बस इतना कहता हूँ
वह एक दीप लौटा लाओ,

जिसकी लघु वाड़व ज्वाला से
घबरा उठता तम का सागर !

(२)

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन के मधुवन को,
कब कहता हूँ लौटा लाओ
मधुऋतु के विकसे यौवन को,

मधु गंध भार से अलसाए
अलमस्त-चाल मलयानिल को,

मधुरस पीकर उन्मत्त हुए
भौंरे के गुन-गुन गुंजन को;

कब कहता हूँ लौटा लाओ
मेरे जीवन के मधुवन को,

मैं तो बस इतना कहता हूँ
वह एक कली लौटा लाओ,

जिसके सरस छू देने पर
लज्जा से गड़ जाता मधुकर!

(३)

कब कहता हूँ लौटा लाओ
जीवन में मधु के सागर को,
कब कहता हूँ लौटा लाओ
मधुबालाओं की गागर को,

मधुभरी लबालब लहराती
आतीं प्यालों की मालाएँ,

जो अधरों को सिंचित करके
शोणित करती थीं अंतर को,

कब कहता हूँ लौटा लाओ
जीवन में मधु के सागर को;

मैं तो बस इतना कहता हूँ
वह एक बूँद लौटा लाओ,

जो सुधामयी बन जाती है
गिरकर अधरों से अधरों पर !

लौटा लाओ

(४)

मन आशा से, नयन स्वप्न से,
हृदय प्रणय से बँध जाता,
विश्व दीप में, मधुऋतु कलि में
सिंधु बिंदु में है लहराता।

अभिसार के पल

(१)

सुमुखि ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

काल-सागर में न क्षण-कण
ये कहीं खो जाँय,
आदि होते ही न इनका
अंत भी हो जाय;

समय दुहराता नहीं यह
स्नेह का उपहार,
सुमुखि ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

(२)

भूल थी मेरी कि वादा
कर लिया था और,
एक युग से और था
मेरा तरीका-तौर;

किंतु युग की भूल का है
एक क्षण प्रतिकार,
सुमुखि ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

(३)

कर सकेंगी मानवों का
जो सदा कल्याण,
विश्व की उन हलचलों को
आज मेरी दान;

कुछ पलों पर किंतु एकाकी
मुझे अधिकार !
सुमुखि ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

(४)

चल सुधारूँगा हुई
संसार में जो भूल,

कल उठाऊँगा भुजा
अन्याय के प्रतिकूल,

आज तो कह दो कि मेरा
बंद शयनागार !
सुमुखि ये अभिसार के पल,
चल करें अभिसार !

सतरंगिनी

छठवाँ खंड

नया वर्ष

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।

नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।

नवल चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।

गीत नवल,
प्रीति नवल,
जीवन की रीति नवल,
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल!

नव दर्शन

दर्श नवल,
स्पर्श नवल,
जीवन-आकर्ष नवल,
जीवन आदर्श नवल।

वर्ण नवल,
वेश नवल,
जीवन-उन्मेष नवल,
जीवन-संदेश नवल।

प्राण नवल,
हृदय नवल,
जीवन की प्रणति नवल,
जीवन में प्रणय नवल।।

एक दाह

दाह एक,
आह एक,
जीवन की चाहि एक!

प्यास एक,
आस एक,
जीवन इतिहास एक।

आग एक,
राग एक,
जीवन का भाग एक।

तीर एक,
पीर एक,
नयनों में नीर एक,
जीवन-जंजीर एक।

नव दर्शन

दर्श नवल,
स्पर्श नवल,
जीवन-आकर्ष नवल,,
जीवन आदर्श नवल।

वर्ण नवल,
वेश नवल,
जीवन-उन्मेष नवल,
जीवन-संदेश नवल।

प्राण नवल,
हृदय नवल,
जीवन की प्रणति नवल,
जीवन में प्रणय नवल॥

नवल प्रात

नवल डाल,
नवल बाग,
जीवन की नवल आग।

नवल अंग,
नवल रंग,
जीवन का नवल संग।

नवल बैन,
नवल सैन,
जीवन में नवल चैन।

नवल नींद,
नवल प्रात,
जीवन का नव प्रभात,
नवल नवल किरण-स्नात।

एक स्नेह

एक पलक,
एक झलक,
दो मन में एक ललक।

एक पास,
एक पहर,
दो मन में एक लहर।

एक रात,
एक साथ,
दो मन में एक बात।

एक गेह,
एक देह,
दो मन में एक स्नेह।

नवीन उत्तरदायित्व

कवि का आचार नवल,
कवि का व्यवहार नवल,
कवि का उद्‌गार नवल।

कवि का आधार नवल,
कवि का अधिकार नवल,
कवि का संसार नवल।

कवि का मंतव्य नवल,
कवि का कर्तव्य नवल,
कवि का भवितव्य नवल।

कवि का व्यक्तित्व नवल,
कवि का अस्तित्व नवल,
उत्तरदायित्व नवल।

नूतन सृष्टि

फुल्ल कमल,
गोद नवल,
मोद नवल,
गेह में विनोद नवल।

बाल नवल,
लाल नवल,
दीपक में ज्वाल नवल।

दूध नवल,
पूत नवल,
वंश में विभूति नवल।

नवल दृश्य,
नवल दृष्टि,
जीवन का नव भविष्य,
जीवन की नवल सृष्टि।

सतरंगिनी

सतवाँ खंड

१—प्रेम

२—जग

३—जीवन

४—काल

५—कर्तव्य

६—साधना

७—विश्वास

काल

तुम नहीं करते कभी कुछ नष्ट
जन्मती जिससे नहीं नव सृष्टि,
किंतु यदि करते कभी बर्बाद
कुछ कि जो सुंदर, सुमधुर, अनूप,
मानवों की चमत्कारी याद
है बनाती एक उसका रूप
और सुंदर और मधुमय, पूत,
जानता है जो भविष्य न भूत,
सब समय रह वर्तमान समान
विश्व का करता सतत कल्याण!

काल

कल्प कल्पांतर मदांध समान
काल तुम चलते रहे अनजान,
आ गया जो भी तुम्हारे पास
कर दिया तुमने उसे बस नाश।

मिटा क्या-क्या छू तुम्हारा हाथ
यह किसी को भी नहीं है ज्ञात,
किंतु अब तो मानवों की आँख
सजग प्रतिपल, घड़ी, वासर, पाख,
उल्लिखित प्रति पग तुम्हारी चाल,
उल्लिखित हर एक पल का हाल,
अब नहीं तुम प्रलय के जड़ दास,
अब तुम्हारा नाम है इतिहास!
ध्वंस की अब हो न शक्ति प्रचंड,
सभ्यता के वृद्धि मापक दंड!
नाश के अब हो न गर्त महान,
प्रगतिमय संसार के सोपान!

(४)

क्योंकि नहीं बस इससे नाता
जब तक जीवन काल हमारा,
खेल, कूद, पढ़, बढ़ इसमें ही
रहने को है लाल हमारा।

कर्तव्य

(१)

देवि, गया है जोड़ा यह जो
मेरा और तुम्हारा नाता,
नहीं तुम्हारा - मेरा केवल,
जग - जीवन से मेल कराता।

(२)

दुनिया अपनी, जीवन अपना,
सत्य, नहीं केवल मन-सपना;
मन-सपने-सा इसे बनाने
का, आओ, हम-तुम प्रण ठानें।

(३)

जैसी हमने पाई दुनिया,
आओ, उससे बेहतर छोड़ें,
शुचि-सुंदरतर इसे बनाने
से मुँह अपना कभी न मोड़ें।

(४)

क्योंकि नहीं बस इससे नाता
जब तक जीवन काल हमारा,
खेल, कूद, पढ़, बढ़ इसमें ही
रहने को है लाल हमारा।

साधना

(१)

मिल गया माँगा बहुत कुछ
पर कहाँ संतोष मन में,
दोष दुनिया का नहीं है
यदि कहीं तो, दोष मन में;
पूर्ण अभिलाषा पुरानी
आज भी लगने लगी है,
नवल स्वप्नों के लिए
भरने लगा है जोश मन में;
लालसाएँ ले यही
वरदान या अभिशाप आईं—
एक फल दे, दूसरी नव अंकुरित हो।

(२)

देख सकता स्वप्न में इस
बात का है हर्ष मुझको,
मोह सकता आज भी जग
का नया उत्कर्ष मुझको,

कम नहीं देखी जगत की
निम्नता, कटुता, कुटिलता,

किंतु अपनी ओर फिर भी
खींचते आदर्श मुझको,

जो कि जीने - योग्य, मरने-
योग्य जीवन को बनाते,
अस्त जो होते नहीं मन में उदित हो।

(३)

रख चला आदर्श ऊँचा
है नहीं पछताव इसपर,
शक्तियाँ अपनी न जाँचीं
है नहीं इसका मुझे डर,

दूर अपने ध्येय से हूँ,
लाज इसकी भी नहीं है,

क्योंकि अपनी साधना में
हूँ सदा सब काल तत्पर,

और तत्पर ही रहूँगा
क्योंकि तुम हो साथ मेरे;
मैं अथक संघर्ष, तुम आशा अजित हो !
मैं अटल संकल्प, तुम श्रद्धा अमित हो !

विश्वास

(१)

पंथ जीवन का चुनौती
दे रहा है हर क़दम पर,
आखिरी मंज़िल नहीं होती
कहीं भी दृष्टिगोचर,
धूलि से लद, स्वेद से सिंच
हो गई है देह भारी,
कौन-सा विश्वास मुझको
खींचता जाता निरंतर !—
पंथ क्या, पथ की थकन क्या,
स्वेद कण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं ।

(२)

एक भी संदेश आशा
का नहीं देते सितारे,
प्रकृति ने मंगल शकुन पथ
में नहीं मेरे सँवारे,

विश्व का उत्साह वर्धक
शब्द भी मैंने सुना कब,

किंतु बढ़ता जा रहा हूँ
लक्ष्य पर किसके सहारे?—

विश्व की अवहेलना क्या,
अपशकुन क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

(३)

चल रहा है पर पहुँचना
लक्ष्य पर इसका अनिश्चित,
कर्म कर भी कर्म फल से
यदि रहा यह पांथ वंचित,

विश्व तो उसपर हँसेगा
'खूब भूला, खूब भटका!'
किंतु गा यह पंक्तियाँ दो
वह करेगा धैर्य संचित:—

विश्वास

व्यर्थ जीवन, व्यर्थ जीवन
की लगन क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं !

(४)

अब नहीं उस पार का भी
भय मुझे कुछ भी सताता,
उस तरफ़ के लोक में भी
जुड़ चुका है एक नाता,
मैं उसे भूला नहीं तो
वह नहीं भूली मुझे भी,

मृत्यु-पथ पर भी बढ़ूँगा
मोद से यह गुनगुनाता:—

अंत यौवन, अंत जीवन
का, मगर क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं !

समाप्त

विकल विश्व

(कवि की नवीनतम रचना)

यह कवि की १९४०-४४ में लिखित गीतों का संग्रह है। 'एकांत संगीत' लिखते समय कवि को ऐसा अनुभव हुआ था कि उनकी वाणी आंतरिक अशांति को व्यक्त करके ही संतुष्ट नहीं हो जाती, वरन विश्व की व्याकुलता को भी व्यक्त करना चाहती है। इस कारण उन्होंने अपने गीतों को दो मालाओं में विभक्त कर दिया था। आंतरिक विकलता से संबंध रखने वाली कविताएँ 'आकुल अंतर' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विश्व की विकलता से संबंध रखने वाली कविताएँ हैं।

आज संसार में जो अशांति फैली हुई है उससे कोई भी व्यक्ति अपने को अस्पृष्ट नहीं रख सकता। जो व्यक्ति अपनी शांति का अभिलाषी है उसे विश्व की अशांति को समझना और उसका उपचार खोजना पड़ेगा। जो शांति संसार की अशांति की उपेक्षा करके प्राप्त की जायगी वह काल्पनिक होगी, अस्थाई होगी और झूठी होगी।

आप देख चुके हैं कि 'आकुल अंतर' में कवि ने किस प्रकार अपना विकास दुर्बलता से दृढ़ता की ओर, निराशा से आशा की ओर और अकर्मण्यता से कर्मण्यता की ओर किया है। आइए अब देखिए कि उसने विश्व की विरूपता, विशृंखलता और क्रूरता के साथ कैसे अपने आप को एक करके आशा और विश्वास से उसके भविष्य का स्वप्न देखा है।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुकलश

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', 'कवि की वासना', 'कवि की निराशा', 'कवि का गीत', 'कवि का उपहास', 'लहरों का निमंत्रण', 'मेघदूत के प्रति' आदि कविताओं का संग्रह है।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बच्चन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है संभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियों की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परंतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य में व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता में किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधुकलश' की अधिकांश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारों ओर के वातावरण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है इसे देखना हो तो आप 'मधुकलश' की कविताएँ पढ़िए। इनमें [illegible] साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी संदेश है।

इसी पुस्तक के विषय में मिश्रबंधु ने लिखा था, 'बच्चन जी की कविताएँ पढ़ते समय हमें इस बात की प्रसन्नता होती है कि हिंदी का यह कवि मानवता का गीत गाता है।'

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुबाला

(पाँचवाँ संस्करण)

यह कवि की १६३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक-मधुशाला', 'मधुपायी', 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला', 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल', 'इस पार—उस पार', 'पाँच पुकार', 'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का संग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वयं मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। जिस समय यह गीत लिखे गये थे उस समय 'हाला', 'प्याला', 'मधुशाला' के रूपक हिंदी में नए ही थे, फिर भी कवि ने उन्हें अपने कितने भावों, विचारों और कल्पनाओं का केंद्र बना दिया है इसे आप गीतों को पढ़कर स्वयं देख लेंगे। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुन्दरता, भाषा की स्वाभाविकता, छंदों का स्वच्छंद संगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह गूढ़ शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचंदजी ने हंस में लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फ़िलासफ़ी है।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(छठा संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का ज़ोरदार संदेश भी दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण वे उनके आदर्श रूप से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी उतना ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आप भी इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती में झूम उठिए।

संस्करण समाप्तप्राय है अपनी प्रति शीघ्र मँगाइए।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुबाला

(पाँचवाँ संस्करण)

यह कवि की १९३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक-मधुशाला', 'मधुपायी', 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला', 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल', 'इस पार—उस पार', 'पाँच पुकार', 'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का संग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वयं मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। जिस समय यह गीत लिखे गये थे उस समय 'हाला', 'प्याला', 'मधुशाला' के रूपक हिंदी में नए ही थे, फिर भी कवि ने उन्हें अपने कितने भावों, विचारों और कल्पनाओं का केंद्र बना दिया है इसे आप गीतों को पढ़कर स्वयं देख लेंगे। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुन्दरता, भाषा की स्वाभाविकता, छंदों का स्वच्छंद संगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचंदजी ने हंस में लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फिलासफी है।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(छठा संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का ज़ोरदार संदेश भी दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण ये उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय में होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी उसका वैसा ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती में खूब डूबिए।

संस्करण समाप्तप्राय है अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

ख़ैयाम की मधुशाला

(तीसरा संस्करण)

यह फ़िट्ज़जेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपांतर है जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनंद नहीं आता, परंतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दीख पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनंद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचन्द जी ने जनवरी '३६ के 'हंस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया; उसी रंग में ढल गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि:—

प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग

(पहला संस्करण)

बच्चन की प्रारंभिक रचनाओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सन् '३२ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उनकी दूसरी पुस्तक 'मधुशाला' सन् '३५ में प्रकाशित हुई। इन दोनों पुस्तकों में विचार-धारा तथा कवित्व की दृष्टि से बहुत अंतर था जिससे साधारण पाठक तथा आलोचक दोनों विस्मित थे। इस रहस्य का कारण था कवि की लिखी बीच की कविताओं का प्रकाश में न आना। आज जब उनकी कविताएँ लाखों मनुष्यों द्वारा पढ़ी और सुनी जाती हैं और कवि के प्रति उनका सहज प्रेम है तब यह आवश्यक समझा गया कि उनकी बीच की कविताओं का प्रकाशन भी किया जाय। इसी विचार के अनुसार 'तेरा हार' में उसके बाद की २३ और कविताएँ सम्मिलित कर 'प्रारंभिक रचनाएँ' का पहला भाग प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक का दूसरा भाग भी प्रकाशित हो रहा है जिससे कि 'मधुशाला' तक की लिखी सब रचनाएँ पाठकों के सामने आ जाएँ।

यद्यपि यह बच्चन की प्रारंभिक रचनाएँ हैं, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इनकी प्रशंसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम-विकास समझने के लिए इन्हें देखना बहुत आवश्यक है।

पर इन कविताओं की महत्ता केवल ऐतिहासिक ही नहीं है। भावना की दृष्टि से भी इनके अंदर कुछ ऐसा है जो अपने को प्रकट करने के लिए किसी कला की प्रौढ़ता की अपेक्षा नहीं करता।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग

(पहला संस्करण)

जैसा कि नाम से ही प्रकट है यह प्रारंभिक कविताओं के संग्रह का दूसरा भाग है। प्रारंभिक रचनाएँ, प्रथम भाग की लगभग आधी कविताएँ पहले 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं, परंतु इस भाग की समस्त कविताएँ पहली बार जनता के सामने लाई जा रही हैं, केवल दो कविताएँ, 'कवि के आँसू' 'विशाल भारत' में, और 'ग्रीष्म बयार' 'सुधा' में प्रकाशित हुई थीं।

इस भाग की कविताएँ प्रायः १९३१-३३ के अंदर लिखी गई हैं। देश के इतिहास से परिचित लोग जानते हैं कि यह समय कितनी आशाओं, आयोजनों और दमनों का था। ऐसे समय में एक नवयुवक कवि की प्रतिक्रियाएँ क्या हुईं, इसे जानने के लिए इस पुस्तक का देखना बहुत ज़रूरी है।

बच्चन का अपनी मधुशाला के साथ प्रवेश करना एक ऐतिहासिक घटना थी। ये कविताएँ मधुशाला की रचना के ठीक पहले की हैं। इन्हें पढ़ने से आपको पता चल जायगा कि इनमें मधुशाला के गायक की तैयारी हो रही थी। शृंगारिकता और क्रांति का जो मिश्रण मधुशाला में दृष्टिगोचर होता है उसकी पहली झलक आपको इन कविताओं में मिलेगी। प्रारंभिक रचनाओं के दूसरे भाग का अंत ही तीन कहानियों के साथ होता है और उनके पढ़ने वालों को कहना है कि कहानियों की यह भाग प्रकाशित थी कि जिससे समस्त हिंदी समाज झंकृत हो उठा।

आप इस पुस्तक को एक बार अवश्य देखिए।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद